THE ECONOMIC TIMES

Date:05-12-19

In a WTO Without Dispute Settlement

ET Editorials

India's international trade, already affected by the general slowdown in global growth, is likely to face further headwinds. The appellate body of the World Trade Organisation (WTO) would almost certainly become non-functional soon, because America has blocked new appointments to the court.India's trade policy needs to anticipate a broken dispute-settlement mechanism at the WTO, for now, and take proactive action, including to promptly seek regional and bilateral trade pacts. The WTO appellate court is supposed to consist of seven judges; the court decides on appeals against decisions by the Dispute Settlement Mechanism on alleged violation of global trade rules. But the WTO bench has of late dwindled to just three judges, and two of them will retire this month; a single judge cannot hold court. So, dispute settlement may well go into deep freeze at WTO, unless the Trump administration does a rethink, which is unlikely.

India accounts for a mere 2% of world trade, and there can be much upside to our trade relations if we can get our act together. The way forward is to rationalise tariffs, so as to gain from increased trade and openness. In tandem, there is the pressing need to shore up innovation, enterprise and profit from trade gains. What is also required is systematic policy action to fill the infrastructure deficit to bring down costs and boost our trade competitiveness. Trade strategy needs sound thinking through.

The EU, Canada and Norway are reportedly going ahead with an interim arbitration mechanism at the WTO, consisting of retired appellate body members. India clearly needs to support the move. In parallel, New Delhi needs to urge Washington to revisit its summary stalling. The US deems the appellate body much too European, and a via media is surely possible going forward. The Americans have been unhappy with the appellate body rulings for long, and India needs to back calls for WTO reforms. It is very much in our interest to seek a rule-based multilateral trading system. Unilateralism merely makes world trade more uncertain.

दैनिक भास्कर

Date:05-12-19

एक ओर शनमुग की सफलता तो दूसरी ओर ये पोर्न देखने वाले

संपादकीय

हमारे समाज में दो किस्म के भारत हैं। पहला, जिसमें 33 वर्षीय शनमुग सुब्रह्मण्यम है, जो कई दिनों तक चंद्रयान-2 के लैंडर विक्रम के गिरने के पहले व उसके बाद की नासा द्वारा जारी चांद की सतह की तस्वीरों को डाउनलोड कर तुलना करता रहा। अंत में उसने विक्रम के टुकड़ों को ढूंढ निकाला, यानी एक ऐसी सफलता जिसे लेकर इसरो ने भी हाथ खड़े कर दिए थे और अमेरिकी नासा ने भी। युवा शनमुग एक साधारण एप डेवलपर है। आज दुनिया इस उत्साह की तारीफ कर रही है। एक और भारत है, जिसमें हममें से लाखों नहीं करोड़ों, दरिंदगी की शिकार हुई हैदराबाद की उस महिला डॉक्टर का वीडियो सैकड़ों पोर्न-साइट्स पर तलाश रहे हैं। दोनों की मानसिकता में जमीन-आसमान की दूरी है। एक सकारात्मक सोच से दुनिया को बदलने को आतुर है और दूसरों की मानसिकता दरिंदों जैसी ही है। शनमुग समाज में सर्वोत्तम मानवीय चिंतन का प्रतिफल है तो दुष्कर्मी और पोर्न देखने वाले मानवभेषी दानव। आज इस दूसरे समाज को बदलना सरकार का नहीं, पूरे समाज का दायित्व है, ताकि इन दुष्कर्मियों और पोर्न साइट्स पर पीड़िता की तस्वीर तलाशने वालों को भी शनमुग की तरह सकारात्मक सोच की ओर ले जा सके। यह सकारात्मक सोच ही है, जिसके तहत दिल्ली स्थित देश की मशहूर चिकित्सा संस्था एम्स अब पोस्टमार्टम के लिए मानव लाशों की चीर-फाड़ करने की जगह वर्चुअल पोस्टमार्टम (रेडियो तरंगों से ही अंदर की अवस्था जानने की विधि) का प्रयोग अगले छह माह में शुरू करेगा। इससे समय भी कम लगेगा और लाश के प्रति असम्मान का बोध भी परिजनों को नहीं होगा। उधर, आईआईटी, कानपुर के इंजीनियर्स और लखनऊ के पीजीआई के डॉक्टर्स ने मिलकर एक यंत्र बनाया है, जिससे गर्दन के पास रीढ़ की हड्डी के सी-1 और सी-2 की दुरूह सर्जरी की जाएगी। दुनिया में यह पहला यंत्र होगा। सर्जिकल डिस्ट्रेक्टर नामक इस आठ इंच लंबे यंत्र से छोटी-छोटी हड्डियों को सही जगह फिर से लगाया जा सकेगा। शनमुग जैसी सकारात्मकता दुष्कर्मियों में लाने के लिए सभी सामाजिक-धार्मिक संस्थाओं को एक साथ आना होगा। हमें अपने प्रतिमान बदलने होंगे, ताकि दुष्कर्मी भी यह सोचें कि उसके कुकृत्य की वजह से ऐसे 'दरिंदों' को भीड़ को सौंपने की मांग तक संसद में उठ रही है, जबकि शनमुग को यही भीड़ अपने कंधों पर उठाना चाहती है।

Date:05-12-19

डबल इंजन की सरकारों में एक इंजन उल्टा क्यों ?

खराब आंकड़ों व राज्यों में घटते ग्राफ के बावजूद भाजपा के शीर्ष नेतृत्व पर भरोसा

एन के सिंह

एनएसएस के एक और सर्वे ने फिर भारत सरकार के आंकड़ों को गलत करार दिया है। तीन हफ्ते में यह तीसरी सर्वे रिपोर्ट है, जिसने सरकार की कलाई खोली है। इस ताज़ा रिपोर्ट के अनुसार 83 प्रतिशत टीकाकरण के सरकारी आंकड़ों के मुकाबले सर्वे में केवल 60 प्रतिशत बच्चों (पांच साल से कम) का टीकाकरण पाया गया और वह भी तब जब 90 प्रतिशत डिलीवरी अस्पतालों में हो रही है। इसके पहले इसी संस्था ने अपनी रिपोर्ट में बताया था कि ग्रामीण भारत में 25 प्रतिशत लोग अब भी शौचालय की सुविधा से वंचित हैं, जबकि भारत सरकार ने देश को 'खुले में शौच से मुक्त' घोषित कर दिया है। उधर, सीएजी की एक सप्ताह पूर्व की रिपोर्ट के अनुसार, उत्तर प्रदेश में बाल मृत्यु के सरकारी आंकड़े पिछले पांच साल से कम करके बताए जा रहे हैं।

ये दोनों संस्थाएं काफी अहम और कुछ हद तक स्वायत्त मानी जाती हैं। लिहाज़ा अब किरकिरी होने पर सरकार के अधिकारियों ने यह आरोप लगना शुरू किया है कि एनएनएस का सैंपल साइज़ छोटा है और लोगों ने ज्यादा मदद के लालच में झूठ बोलना शुरू किया है। लेकिन, मैंने स्वयं एक गांव में दो दिन पहले जाकर पाया कि कुछ लाभार्थियों ने सरकारी अमले से मिलकर एक बने-बनाए शौचालय के पास खड़े होकर फोटो खिंचवाया और पैसे ले लिए। ऐसे हैं सरकारी आंकड़ों में दर्ज नए शौचालय।

दुनिया के 180 देशों में भ्रष्टाचार में भारत 78वें स्थान पर है और हर दूसरे भारतीय ने 2019 में अपना काम कराने के लिए घूस दी है। जहां राजस्थान में हर दस में से सात लोगों ने घूस दी, वहीं केरल में केवल एक व्यक्ति ने। सकारात्मक भाव से देखें तो पिछले एक साल में विश्व पटल पर इस रैंकिंग में तीन स्थान ऊपर आना एक उपलब्धि मानी जा सकती है। कुछ उसी तरह जैसे 2.83 ट्रिलियन डॉलर की जीडीपी (सकल घरेलू उत्पाद) के साथ हम छठे स्थान पर हैं और प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी के दावों पर भरोसा करें तो अगले चार साल में पांच ट्रिलियन डॉलर की अर्थव्यवस्था के साथ हम शायद तीसरे स्थान पर होंगे। लेकिन, यह सकारात्मक भाव उस समय तिरोहित हो जाता है जब यह रिपोर्ट आती है कि विश्व भूख सूचकांक में 117 देशों में भारत 103वें स्थान पर है और वह भी पांच साल में दस स्थानों की गिरावट के साथ। इन तथ्यों के बावजूद प्रधानमंत्री मोदी की जन-स्वीकार्यता घटी नहीं, बढ़ी है। इस बात की पुष्टि एक अन्य ताज़ा सर्वेक्षण से होती है। दुनिया में जानी-मानी संस्था डालबर्ग के एक ताज़ा अध्ययन के अनुसार 97 प्रतिशत भारतीयों का यह मानना है कि आधार की वजह से सरकार की और से चलाई जाने वाली योजनाओं में भुगतान काफी हद तक तेज और भ्रष्टाचार-शून्य हो गया है और वे इससे संतुष्ट हैं। जिन लोगों को आधार से कोई भी सुविधा नहीं मिली, उनमें से दो-तिहाई यह मानते हैं कि आधार एक अच्छी कोशिश है। ये निष्कर्ष सरकार के प्रति लोगों के बढ़ते विश्वास का सूचक है। आमजन आधार को सीधे मोदी से और उसके लाभ को केंद्र की सरकार से जोड़कर देखता है।

इसका दूसरा पक्ष देखें- मोदी की भारतीय जनता पार्टी का दो साल पहले तक अपनी राज्य सरकारों के जरिये 72 प्रतिशत आबादी पर शासन था जो आज मात्र 41 प्रतिशत रह गया है। इस अवधि में पार्टी ने कई बड़े राज्यों में सरकारें खो दीं। इसके विपरीत छह माह पहले हुए लोकसभा चुनाव में पहले से अधिक मत प्रतिशत और ज्यादा सीटों के साथ जनता ने दोबारा मोदी सरकार को चुना। यह विरोधाभास इस बात के संकेत हैं कि मोदी को तो केंद्र की सत्ता में जनता आज भी देखना चाहती है, लेकिन राज्यों की भाजपा सरकारों से उसकी नाराजगी बढ़ी है। चूंकि राज्य सरकारों के पास पुलिस, क्षेत्रीय सड़कें, स्कूल और अस्पताल होते हैं, पानी -बिजली का जिम्मा है, लिहाज़ा नाकारा सरकारों के प्रति नाराजगी स्वाभाविक है। राज्यों में भाजपा सरकारों के प्रति नाराजगी का एक और कारण है मुख्यमंत्रियों को सीधे तौर पर खराब परफार्मेंस के लिए जिम्मेदार न ठहराना। अगर कोई मुख्यमंत्री सरयू के तट पर पांच लाख दिए जलाकर प्रदेश को विकसित बताए, जबकि अपराध के आंकड़े कुछ और कह रहे हों। ये कुछ कारण हैं जिनसे भाजपा शासित राज्यों के नेतृत्व के प्रति लोगों की नाराजगी चुनाव-दर-चुनाव जाहिर हो रही है। क्या पीएमओ को इन तथ्यों का संज्ञान लेकर राज्य के मुखिया से पूछना नहीं चाहिए कि 'डबल इंजन' में एक इंजन उल्टी दिशा में क्यों खींच रहा है?

Date:05-12-19

मजबूत सरकार नहीं, मजबूत नागरिक अहम

महाराष्ट्र में उद्धव ठाकरे के मुख्यमंत्री बनने के बाद उम्मीद है कि अब लोगों की बातों को सुना जाएगा

प्रीतीश नंदी

महाराष्ट्र में सरकार बनाने वाला महा विकास आघाड़ी कई तरह से भविष्य के संकेत देता है। यह कोई ऐसा गठबंधन नहीं है, जैसा पहले नहीं बना हो। इनमें कुछ सफल रहे और कुछ विफल हो गए। लेकिन, शायद ही पहले ऐसा हुआ हो जब पूरी तरह भिन्न इतिहास और विचारधारा वाले तीन दल अपने सभी मतभेदों को भुलाकर एक दंभी व जनता की बात को न सुनने वाले शासन का विकल्प देने के लिए ऐसे न्यूनतम साझा कार्यक्रम के तहत साथ आए हों, जिसमें तीनों अपनी अलग पहचान को कायम रखते हुए साथ काम कर सकते हैं।

आघाड़ी ने एक तरह से आने वाले समय में विचारधाराओं की तकदीर तय कर दी है। बाकी दुनिया की तरह हम भी अब राजनीति के एक नए दौर में प्रवेश कर रहे हैं, जहां पहले की जाति, धर्म व विचारधारा की बड़ी-बड़ी बातों व उनके परस्पर विरोधी इतिहास पर कुछ समय के लिए रोक लगेगी। हम तकनीक, डाटा, मीडिया, पर्यावरण की चिंता व मानव के भविष्य को संचालित करने वाली बदलाव की ताकतो के बीच ऐसे आसान गठबंधन बनते हुए देख सकते हैं। अगर और कुछ नहीं तो भी यह हमें बाकी दुनिया के साथ शामिल करेगा और उम्मीद है कि देश को जला रही संघर्ष और टकराव की राजनीति से बाहर निकलने का कोई रास्ता सुझाएगा।

इसके अलावा यह महाराष्ट्र में पिछले पांच सालों से चल रहे शासन के तरीके में भी वांछित बदलाव ला सकता है। संभवत: हमें फिर से एक ऐसी शासन व्यवस्था मिलेगी, जो हर तरह के विरोध की आवाज़ों को सुनने के लिए तैयार होगी। फिर वह चाहे आत्महत्या के लिए मजबूर किया जा रहा गरीब किसान या बेरोजगार युवा हो, नोटबंदी और जीएसटी की वजह से अपनी आजीविका खाने वाले व देश की 80 फीसदी वास्तविक अर्थव्यवस्था का प्रतिनिधित्व करने वाले छोटे व्यापारी हों अथवा जलवायु परिवर्तन और पर्यावरण को हो रहे नुकसान से चिंतित लोग।

उद्धव ठाकरे द्वारा उठाए गए कुछ कदम दिखाते हैं कि और कुछ न भी हो तो भी वे असहमति के स्वरों को सुनने के लिए तैयार हैं। उद्धव अनुमानित लगते हैं, लेकिन वे स्पष्ट तौर पर ऐसा कुछ करने की तैयारी में हैं, जिससे फडणवीस

सरकार के बहरेपन की वजह से चोट खाए लोगा की चिंताओं का निराकरण हो सके। किसानों से तत्काल राहत का वादा किया गया है। उन्होंने आश्वासन दिया है कि आरे में मेट्रो कार शेड के लिए अब एक भी पेड़ नहीं काटा जाएगा। उन्होंने यह वादा भी किया है कि शहर की पर्यावरणीय धरोहर आरे को एक बार फिर से पहले की तरह वन विभाग को दे दिया जाएगा। मेट्रो पर काम जारी रहेगा, लेकिन कार शेड के लिए कोई और जगह तलाशी जाएगी।

उन्होंने यह भी कहा है कि मुंबई-अहमदाबाद बुलेट ट्रेन परियोजना पर भी पुनर्विचार होगा। इसकी व्यावहारिकता का अध्ययन किया जाएगा। इसके रूट पर विस्थापित होने वाले लोगों और गांवों के बारे में भी जांच होगी। इसके बाद अगर राज्य को लगता है कि केंद्र सरकार का यह तकनीकी शोपीस अपनी कीमत के मुताबिक काम का नहीं है तो वह इसे खत्म करने के लिए कह सकती है। वह चाहेगी कि इस पर खर्च होने वाले धन को मुंबई की लाइफ लाइन कही जाने वाली उपनगरीय रेल सेवा नेटवर्क पर खर्च करना चाहिए, जिसके आधुनिकीकरण की बहुत आवश्यकता है। हकीकत में तो लोगों को बाहर दूसरे शहर जाने से पहले काम पर जाने की जरूरत होती है। इसके अलावा यह रिसर्च भी रुचिकर हो सकती है कि कैश और सोने को लाने व ले जाने वाले अंगादिया को छोड़कर कितने मुंबईवाले सालभर में अहमदाबाद जाते हैं। साथ ही यह भी पता करने की जरूरत है कि इनमें से कितने लोग तड़क-भड़क वाली बुलेट ट्रेन का किराया वहन करने में सक्षम हैं।

आरे में हजारों पेड़ों को काटने के खिलाफ प्रदर्शन करने वाले लोगों पर दर्ज एफआईआर को भी वापस लिया जा रहा है। अब संभवत: किसानों से ऐसे वादे नहीं किए जाएंगे, जिनको पूरा न किया जा सके। पिछले कुछ सालों में हुई ऐसी गलतियों को सुधारा जा सकता है। लेकिन, सबसे महत्वपूर्ण क्या है? हमारे पास अब ऐसी सरकार और ऐसा मुख्यमंत्री है, जो लोगों को सुनने को तैयार है। यही वो बात है, जो अंतर पैदा करेगी। यह बात मायने नहीं रखती कि कितने दल साथ मिलकर काम कर रहे हैं और उनमें हिंदुत्व या धर्मनिरपेक्षता पर समानता है या नहीं। इसका भी कोई मतलब नहीं है यह सरकार कितने दिन चलेगी। यह बात भी कोई अर्थ नहीं रखती कि अवैध तरीके से शपथ लेने वाली 80 घंटे की फड़नवीस सरकार में उपमुख्यमंत्री बनने वाला इस सरकार में भी उपमुख्यमंत्री बनता है या नहीं। जो मायने रखता है वह है नीयत। यह सरकार क्या करना चाहती है और क्या यह अपने नागरिकों की बात सुनेगी?

यही वह जगह है, जहां पर राहुल बजाज की चेतावनी गंभीर रूप से महत्वपूर्ण हो जाती है। अगर लोग प्रदर्शन करने से डरते नहीं हैं। अगर वे जानते हैं कि हमारे पास एक अच्छी सरकार है, जो अपने लोगों की बात सुनने के लिए तैयार है, भले ही वह आलोचना ही क्यों न हो। यही तो था जिसकी कमी पिछले पांच सालों से महाराष्ट्र महसूस कर रहा था। ठाकरे इसे वापस ला सकते हैं और हमें दिखा सकते हैं कि लोकतंत्र का भविष्य सुरक्षित है और इसी तरह महाराष्ट्र का भविष्य भी। यह भी याद रखें कि एक मजबूत सरकार नहीं मजबूत नागरिक महत्वपूर्ण है।

नईदुनिया

Date:05-12-19

नागरिकता का निर्धारण

पक्ष-विपक्ष नागरिकता संशोधन बिल पर सहमत हों जिससे राष्ट्रीय हितों के अलावा मानवीय मूल्यों की भी रक्षा हो। सतर्क रहना होगा कि उदारता आत्मघात का रूप न लेने पाए।

संपादकीय

केंद्रीय कैबिनेट की ओर से नागरिकता संशोधन विधेयक को मंजूरी मिलने के साथ ही उस पर बहस तेज हो जाना स्वाभाविक है, क्योंकि कई विपक्षी दल पहले से ही उसका विरोध कर रहे हैं। इसी विरोध के कारण मोदी सरकार के पहले कार्यकाल में इस विधेयक को संसद की मंजूरी नहीं मिल पाई थी। नागरिकता संशोधन विधेयक यह कहता है कि पड़ोसी देशों और खासकर पाकिस्तान, अफगानिस्तान और बांग्लादेश के अल्पसंख्यक यानी हिंदू, सिख, जैन, बौद्ध, ईसाई, पारसी ही कुछ शर्तों के साथ भारत की नागरिकता पाने के अधिकारी होंगे। विपक्षी दलों के विरोध का आधार यह है कि आखिर पड़ोसी देशों के मुसलमानों को यह रियायत क्यों नहीं दी जा रही है?

इस पर सरकार का तर्क है कि ये तीनों मुस्लिम बहुल देश हैं और यहां मुसलमान नहीं अन्य पंथों के लोग प्रताड़ित होते हैं। इस तथ्य से कोई इन्कार नहीं कर सकता, लेकिन इसी के साथ यह सवाल खड़ा होता है कि क्या बाहरी देशों के लोगों को नागरिकता देने के प्रस्तावित नियम भारत की वसुधैव कुटुंबकम और सर्वधर्म समभाव वाली अवधारणा के अनुकूल होंगे? यह सवाल उठाने वाले यह भी रेखांकित करते हैं कि भारत तो वह देश है जिसने दुनिया भर के लोगों को अपनाया। यह बिल्कुल सही है, लेकिन क्या इसकी अनदेखी कर दी जाए कि असम और अन्य पूर्वोत्तर राज्यों में बांग्लादेश से आए करोड़ों लोगों ने किस तरह वहां के सामाजिक और राजनीतिक माहौल को बदल दिया है?

इसकी अनदेखी नहीं हो सकती कि असम में केवल 19 लाख घुसपैठियों की पहचान हो पाने के कारण राष्ट्रीय नागरिकता रजिस्टर का विरोध हो रहा है। इस विरोध की वजह यही है कि बाहरी लोगों के कारण स्थानीय संस्कृति के लिए खतरा पैदा हो गया है। क्या इस खतरे को ओझल कर दिया जाए? क्या आज भारत के पास इतने संसाधन हैं कि जो भी बाहर से आए उसे यहां की नागरिकता दे दी जाए? आज तो कोई भी और यहां तक कि कम आबादी और भारत से कहीं अधिक समर्थ देश भी ऐसा नहीं करते।

यह सही है कि अगर पड़ोसी देशों के अल्पसंख्यक प्रताड़ित होते हैं तो वे भारत में ही शरण लेना पसंद करते हैं, लेकिन विश्व समुदाय के बीच हमें ऐसे देश के तौर पर भी नहीं दिखना चाहिए जो उपासना पद्धति के आधार पर बाहरी लोगों को शरण देने या न देने का फैसला करता है। बेहतर हो कि पक्ष-विपक्ष ऐसे किसी उपाय वाले नागरिकता संशोधन विधेयक पर सहमत हों जिससे राष्ट्रीय हितों के साथ-साथ मानवीय मूल्यों की भी रक्षा हो। इस क्रम में उन्हें इसे लेकर सतर्क रहना ही होगा कि उदारता आत्मघात का रूप न लेने पाए।

बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date:05-12-19

बारिश पर ही निर्भर खेती पर ध्यान देने की दरकार

सुरिंदर सूद

भारत के असिंचित या बारिश पर निर्भर कृषि-क्षेत्र के इन आयामों पर गौर करते हैं। कुल फसल-क्षेत्र का करीब 52 फीसदी हिस्सा असिंचित है और वहां खेती मुख्य रूप से बारिश पर निर्भर रहती है। देश के 60 फीसदी से अधिक किसान सिंचाई सुविधा के बगैर ही अपनी फसलें उगाते हैं। कृषि एवं संबद्ध गतिविधियों के सकल घरेलू उत्पाद (एग्री-जीडीपी) का 55-60 फीसदी हिस्सा बारिश से सिंचित भूभाग से ही आता है। करीब 90 फीसदी ज्वार, बाजरा, रागी एवं अन्य मोटे अनाज, 85 फीसदी दालें, 70 फीसदी तिलहन और 40 फीसदी चावल सिंचाई की सुविधा से रहित खेतों में ही पैदा हो रहे हैं। करीब 65 फीसदी मवेशियों, 75 फीसदी भेड़ों एवं 80 फीसदी बकरियों की देखभाल बारिश पर निर्भर किसान ही कर रहे हैं।

काफी खेदजनक है कि कृषि के इतने अहम पहलू को विकास प्रक्रिया में जरूरी तवज्जो नहीं दी गई है। निवेश एवं प्रोत्साहक प्रयासों का बड़ा हिस्सा पानी-आधारित खेती तक ही सीमित रहा है। हरित क्रांति की शुरुआत में सिंचित खेती को अध्यारोही प्राथमिकता देना तो समझा जा सकता है। उस समय खाद्य जरूरतों को पूरा करने के लिए यह जरूरी था कि अपने संसाधनों एवं प्रयासों को उन्हीं इलाकों तक केंद्रित रखा जाए कि उपज में फौरी राहत हासिल हो। लेकिन खाद्यान्न उत्पादन में आधिक्य के बाद भी उसी रणनीति पर टिके रहने को सही ठहरा पाना मुश्किल है।

इस भेदभाव का वास्तविक नतीजा यह हुआ है कि बारिश-आश्रित इलाकों में औसत फसल उपज प्रति हेक्टेयर सिर्फ 1.1 टन रह गया है जबकि यह सिंचाई सुविधा वाले इलाकों में 2.8 टन से अधिक हो चुका है। प्रगतिशील किसान आम तौर पर सिंचित खेत से प्रति हेक्टेयर 4-6 टन अनाज की ही फसल उगाते हैं। बारिश पर निर्भर इलाकों को संबद्ध सेवाएं खासकर मार्केटिंग मदद मुहैया कराने में नजरअंदाज किया गया है जिससे उनकी आर्थिक संवहनीयता पर गहरी चोट पहुंची है। बारिश पर आश्रित किसानों की केवल 20-30 फीसदी आय ही फसल उगाने से होती है। बाकी आय मवेशियों की देखभाल एवं दूसरे साधनों से होती है।

इसके उलट सिंचाई सुविधायुक्त खेतों की जुताई करने वाले किसान अपनी आय का करीब 60 फीसदी हिस्सा फसलों से ही जुटा लेते हैं। ऐसे में अचरज नहीं है कि हरित क्रांति काफी हद तक गेहूं, चावल, गन्ना एवं कुछ अन्य सिंचित उपजों तक ही सीमित रहा है। प्रमुख रूप से सूखी जमीन वाली फसलों, मसलन तिलहन, दाल एवं मोटे अनाज, बेहद पौष्टिक माने जाने वाले मोटे अनाजों को इससे खास फायदा नहीं हुआ है। इसे अब और जारी रहने की अनुमति नहीं दी जा सकती है। कृषि अनुसंधान एवं विकास कार्यक्रमों की तवज्जो बारिश पर आश्रित इलाकों पर केंद्रित करने की जरूरत है। हमें यह ध्यान रखना होगा कि इन्हीं इलाकों में ग्रामीण गरीबों की बड़ी आबादी रहती है।

बड़े एवं नजदीकी शुष्क-खेती वाले इलाकों से हर कोई परिचित है। ऐसे अधिकांश इलाके मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, उत्तर प्रदेश, तमिलनाडु, मध्य राजस्थान, सौराष्ट्र एवं पश्चिमी घाटों के कुछ क्षेत्रों में हैं। कई अन्य राज्यों में भी सिंचाई से वंचित जमीनों का बड़ा हिस्सा है।

बारिश पर निर्भर इन इलाकों में आम तौर पर छोटे एवं सीमांत जोत वाले किसान ही हैं। वहां पर मृदा अपरदन, क्षरण एवं निम्न उत्पादन की समस्या भी है। भूजल या तो उपलब्ध ही नहीं है या फिर उसकी गुणवत्ता खराब है और ढांचा भी अपर्याप्त है। इन कृषि-क्षेत्रों के किसानों के पास नकदी की भारी किल्लत होती है और उनकी उम्र भी अधिक हो चुकी है क्योंकि युवा पीढ़ी अब कामकाज की तलाश में दूसरी जगहों पर चली जा रही है। इन क्षेत्रों के कृषि-पारिस्थितिकीय हालात काफी अलग हैं और जलवायु परिवर्तन के चलते स्थिति धीरे-धीरे बिगड़ती जा रही है। इस तरह इन इलाकों में कृषि को उन्नत बनाने के लिए क्षेत्र-केंद्रित रणनीति की जरूरत है।

बारिश पर निर्भर खेती की हालत सुधारने के लिए गत दिनों दिल्ली में संपन्न अंतरराष्ट्रीय सम्मेलन में कई मूल्यवान सुझाव सामने आए। यह सम्मेलन 'जलवायु-सजग कृषि के लिए मृदा एवं जल संसाधन प्रबंधन' विषय पर आयोजित किया गया था। वहां जल संरक्षण में नाकामी एवं समुचित एकीकृत खेती प्रणालियों के प्रोत्साहन जैसे मुद्दों पर खुलकर चर्चा हुई। बारिश से सिंचित होने वाले इलाकों में खेती करते समय फसलें उगाने के साथ पेड़ लगाने, पशुपालन, मत्स्यपालन और मधुमक्खी-पालन जैसे संबद्ध काम करने की जरूरत है ताकि उनके बीच सामंजस्य स्थापित किया जा सके। ऐसी खेती प्रणालियां अपने-आप मौसम एवं मूल्य जोखिमों को रोक देती हैं। इससे विपरीत हालात में कम-से-कम किसी काम से तो कमाई हो जाएगी।

किसानों की उत्पादक कंपनियों के गठन को प्रोत्साहन देने से भी कृषि उत्पादन में लगने वाले उत्पादों की खरीद एवं तैयार उपज की बिक्री बेहतर दरों पर की जा सकेगी। ये इकाइयां खेती में नई तकनीकों एवं मशीनों के इस्तेमाल में सहयोगी साबित हो सकती हैं। हालांकि इनमें से कोई भी तरीका कृषि शोध केंद्रों के समुचित समर्थन के बगैर कारगर नहीं हो सकता है। हालात के हिसाब से तकनीकों का इस्तेमाल ही कम लागत पर अधिक उपज दिला सकता है। बारिश पर निर्भर किसानों के लिए खेती को मुनाफे का जरिया बनाने के लिए यह निहायत ही जरूरी है।

राष्ट्रीय सहारा

Date:04-12-19

क्रीमी लेयर पर याचिका

संपादकीय

अरक्षण में क्रीमी लेयर की अवधारणा भी देश में मंडल आयोग की रिपोर्ट के आधार पर आरक्षण की व्यवस्था के थोड़े दिनों बाद ही आ गई। ऊंची जातियों और प्रतिभा को तरजीह देने के पैरोकारों की ओर से विश्वनाथ प्रताप सिंह की सरकार के दौरान लाई गई इस आरक्षण व्यवस्था का विरोध भी हुआ था। फिर तर्क यह आया कि ओबीसी में प्रभावी जातियां ही आरक्षण का लाभ हथिया रही हैं। सुप्रीम कोर्ट ने ओबीसी क्रीमी लेयर को आरक्षण की सुविधा से अलग रखने पर मुहर लगाई। लेकिन इस तर्क को आगे बढ़ाकर जब अनुसूचित जाति-जनजाति के आरक्षण में क्रीमी लेयर की अवधारणा लाई गई और 2006 में सुप्रीम कोर्ट की पांच जजों की बेंच ने अनूसूचित जाति-जनजाति में क्रीमी लेयर वालों को प्रोन्नति में लाभ न देने का फैसला सुनाया। फिर 2018 में जरनैल सिंह मामले में सुप्रीम कोर्ट की पांच जजों की दूसरी बेंच ने 2006 के फैसले को सही ठहराया। मगर प्रोन्नति में आरक्षण खत्म करने पर दलितों की ओर से जोरदार विरोध हुआ। देश भर में जगह-जगह हिंसक प्रदर्शन और बंद हुए। इससे सरकार भी हिली और अब उसने इस मामले पर विचार करने के लिए सात जजों की बड़ी बेंच बैठाने की मांग की है। दलील यह है कि क्रीमी लेयर की अवधारणा ओबीसी तक ही सीमित है क्योंकि पिछड़ी जातियों में कई स्तर हैं और कुछ जातियों की सामाजिक हैसियत अच्छी है या बढ़ी है किंतु अनुसूचित जातियों और जनजातियों में यह स्थिति नहीं है। अगर कुछ परिवार या व्यक्तियों की स्थिति सुधरी भी है तो उनकी सामाजिक हैसियत में कोई बहुत बदलाव नहीं है। दरअसल, इसे देखने के दो तरीके हो सकते हैं। एक, क्या उनकी सामाजिक हैसियत बदली है और दूसरे उनमें आरक्षण का लाभ पाकर कितने लोगों की स्थिति सुधरी है। मोटे तौर जो आंकड़े उपलब्ध हैं, उनके हिसाब से बहुत ही मामूली 2 प्रतिशत के आसपास यह आंकड़ा है। इसके अलावा इससे इन जातियों में यह आशंका भी है कि कहीं यह प्रक्रिया धीरे-धीरे आरक्षण खत्म करने की दिशा में न बढ़े। इसलिए भी इस पर पुनर्विचार की जरूरत महसूस होती है। वजह यह कि आरक्षण का असली मकसद समाज में सबको बराबरी की स्थिति में लाना और वंचितों की सामाजिक हैसियत बदलना है। बेशक राजनीतिक पार्टियां वोट को ध्यान में रखकर ऐसे मामलों में भी अपनी राय करती हैं मगर इस पर विचार वास्तविक तकरे के आधार पर होना चाहिए।